ISSN 2278-8808
An International Peer Reviewed
SJIF 2013 = 4.194
SCHOLARLY RESEARCH JOURNAL
FOR INTERDISCIPLINARY STUDIES

संस्कृत साहित्य एवं चम्पू काव्य

बीरपाल सिंह, Ph. D.

विभागाध्यक्ष संस्कृत, राजकीय महाविद्यालय, गौण्डा (अलीगढ़)

Abstract

चम्पू काव्यों का अग्ङीरस , श्रृंगार , वीर, अथवा शांत कोई भी हो सकता । अन्य रसों का प्रयोग भी यथास्थान किया गया है। वर्णन की दृष्टि से चम्पू काव्य अन्य पुरूषात्मक और संवादात्मक शैलियों में निबद्ध है। चम्पूकाव्यों के गद्य भाग समास–सम्पन्न अलंकृत गद्य शैली में लिखे गये है। चम्पू काव्यों में से कुछ में वार्णिक और मात्रिक दोनों प्रकार के छन्दों का प्रयोग हुआ है। सामान्यतयाः चम्पूकाव्यों का प्रारम्भ मंगलाचरण से हुआ है। काव्य का अन्य मंगल वाक्य या भरत वाक्य से भी हो सकता है, और कथाश्रवण के फल निर्देश से भी। संस्कृत साहित्य की समस्त विधाओं में चम्पू–काव्य साहित्य अपने आप में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। चम्पू काव्य वह है जो सहृदय को चमत्कृत विस्मित पवित्र और प्रसन्न करने की अद्भुत क्षमता से सम्पन्न है। गद्यपद्यमय मिश्र शैली में रचित बन्धयुक्त रचना को चम्पू काव्य कहा जाता है। यह अग्निपुराण में उल्लिखित मिश्र काव्य के दो भेदों ख्यात और प्रकीर्ण में से ख्यात के अन्तर्गत आता है। प्रबन्धात्मकता चम्पू काव्य की वह विशिष्टता जो इसे मिश्र शैली में रचित अन्य काव्य रूपों से पृथक करती है। चम्पू काव्य के मूल तत्व गद्यपद्यमयता के साथ साक्ड़ और सोच्छवास की विशिष्टता जोड़कर आचार्य हेमचन्द्र एवं आचार्य वाग्भट ने इसे, ''गद्यपद्यमयी साड़का सोच्छवासा चम्पूः''कहा। ज्ञातव्य है विभिन्न चम्पू काव्यों के परिप्रेक्ष्य में उक्ति–प्रत्युक्ति और विश्कम्भक का अभाव चम्पू काव्यों का लक्षण नहीं माना जा सकता ।'यशस्तिलक चम्पू में कथा सूत्र को आगे बढ़ाने के लिये पद्य का प्रयोग तथा अनन्त भट्ट कृत भारत चम्पू में नवीन वर्णन हेतु गद्य के अनन्तर पद्य के अनन्तर पद्य का उपयोग है।समकालीन अथवा पूर्ववर्ती रचनाकारों के स्तर का गद्य अथवा पद्य साहित्य सृजित कर सकने की असमर्थता अथवा विवशता के कारण चम्पूकारों द्वारा गद्यपद्यमय शैली का प्रयोग किया गया। इतिहासकारों के इस विचार की पृष्ठभूमि में उपलब्ध चम्पू काव्यों का अपेक्षाकृत हीन काव्यात्मक स्तर कारण रहा है, यद्यपि चम्पू–रामायण, नल–चम्पू आदि कतिपय चम्पू ग्रन्थ काव्यात्मक एवं कलात्मक दृष्टि से उच्चकोटि के काव्य हैं।

परिभाषात्मक शब्दावली : *गद्यपद्यमयी , चम्पू साहित्य, चम्पू काव्य, मिश्रित शैली ।*

चम्पू शब्द का आविर्भावः

चम्पू शब्द की व्युत्पति चुरादि गण की गत्यर्थक 'चपि' धातु से 'उ' प्रत्यय लगाकर 'चम्पयति चम्पति इति वा चम्पूः' की जाती , किन्तु इस व्युत्पति से शब्द का स्वरूप मात्र उपस्थित होता है। जिस रचना के लिये 'चम्पू' शब्द व्यवहृत होता है वहाँ तक यह व्युत्पति सरलता से नहीं पहुँच पाती। गति के चार अर्थ होते हैं, 'गमन' , 'ज्ञान', 'प्राप्ति' तथा 'मोक्ष'। इस आधार पर यह अर्थ निकाला जा सकता है कि चम्पू उस काव्य रचना को कहते हैं जो मोक्ष सहोदर आनन्द प्राप्त कराये, किन्तु इस तरह की उपलब्धि तो हर तरह के काव्य से अपेक्षित है। सहृदयों को आनन्द देने की क्षमता सर्वविध काव्य में होनी ही चाहिये। अतः उक्त व्युत्पति कथमपि काव्य विशेष का लक्षक नहीं हो सकती।

हरिदासजी भट्टाचार्य ने चम्पू की व्युत्पति परक व्याख्या करते हुये, ''चमत्कृत्य पुनाति सहृदयान् विस्मितीकृत्य प्रसादयति इति चम्पू'' कहा है। यह व्युत्पति अधिक उपयुक्त है क्योंकि चम्पू काव्यों में

चमत्कार की प्रधानता देखी जा सकती है। चमत्कार से यही तात्पर्य उक्ति–वक्रता तथा शाब्दी–क्रीड़ा से है। चम्पूकाव्यों में रस एवं औचित्य की अपेक्षा पांडित्य प्रदर्शन की ओर कृतिकारों का अधिक ध्यान रहा है। यों तो शब्दार्थ– योजना वैचित्र्य काव्य में पायी ही जाती है, किन्तु चमत्कार प्रदर्शन की सर्वाधिक प्रवृति चम्पू काव्यों में दृष्टिगत होती है।

हरिदासजी भट्टाचार्य कृत चम्पू की उपर्युक्त व्याख्या के अनुसार चम्पू काव्य वह है जो सहृदय को चमत्कृत विस्मित पवित्र और प्रसन्न करने की अद्भुत क्षमता से सम्पन्न है। कुछ दूसरे लक्षणकारों ने भी चम्पू का लक्षण अपने ग्रन्थों में दिया है , जिनका विवेचन अग्रिम पंक्तियों में वक्ष्यमाण है।

चम्पू काव्य लक्षण–विवेचनः

चम्पू काव्य का लक्षण प्रथमतः आचार्य दण्डी द्वारा प्रस्तुत किया गया। इसके पूर्व अग्निपुराण में मिश्र काव्य ौली के ख्याता और प्रकीर्ण इन दो भेदों का उल्लेख मात्र मिलता है आचार्य दण्डी की परिभाषा, ''गद्यपद्यमयी काचिच्चम्पूरित्यपि विद्यते'' ४३ चम्पू काव्य–शैली की बाह्यस्वरूपगत विशे ाता को ही लक्षित करती है। इससे चम्पू काव्य–शैली का अन्तःस्वरूप स्पष्ट नहीं होता है। संस्कृत साहित्य के आचार्यों द्वारा लक्षण–निरूपण की परंपरा के परिपेक्ष्य में ऐसा प्रतीत होता है। कि आचार्य दण्डी के पूर्व चम्पू काव्य–शैली प्रयोगावस्था में ही थी तथा उसे विशिष्ट काव्य–शैली के रूप में महत्व अभी नहीं प्राप्त हो सका था। उपर्युक्त परिभाषा में प्रयुक्त 'कचित' और 'विद्यते' शब्दों से चम्पू साहित्य के प्रति तत्कालीन विद्वत्समाज की उपेक्षा का भाव भी प्रकट होता है। आगे चलकर चम्पू काव्य के मूल तत्व गद्यपद्यमयता के साथ साक्ड़ और सोच्छवास की विशिष्टता जोड़कर आचार्य हेमचन्द्र एवं आचार्य वाग्भट ने इसे, ''गद्यपद्यमयी साड्का सोच्छवासा चम्पूः '' कहा। सक्डत्व एवं सोच्छवासत्व की विशिष्टताओं के समस्त चम्पू काव्यों में उपलब्ध न होने के कारण यह लक्षण अव्याप्ति दोष से ग्रस्त है। यथा यदि नल चम्पू, पारिजातहरण चम्पू, नरसिंहचम्पू, माधव चम्पू, वीरभद्रविजय चम्पू आदि चम्पू काव्यों में उच्छवास है, तो भागवत, भारत विजयदेव आंनद विजय, धर्म–विजय, श्री निवासमान भोपाल चरित आदि चम्पूओं में स्तवक हैं। इसी प्रकार यशस्तिलक चम्पू, वसु चरित, यात्रा प्रबन्ध, आनंदकंद, नीलकण्ठ विजय, द्रौपदी परिणय, कृष्ण–विलास, शिवचरित, कुमार सम्भव आदि चम्पू आश्वसों में, यतिराज विजय, नाथमुनि विजय, बाणासुरविजय, भद्रकन्या परिणय आदि चम्पू उल्लासों में, विद्वान्नमोदतरंगिणी, गौरी मायूर महात्म्य आदि चम्पू तरंगों में, जीवनधर चम्पू लम्भकों में , आचार्य दिग्विजय चम्पू कल्लोलों में, भागीरथी चम्पू मनोरथों में, मन्दारमरन्द चम्पू विन्दुओं में तथा रामचन्द्र चम्पू परिच्छेदों में विभाजित है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि विभिन्न चम्पूकारों ने अपने ग्रन्थों या अपनी रचनाओं के विभाजन में उच्छवास के स्थान पर अपनी इच्छानुसार स्तवक, परिच्छेद, उल्लास, तरंग, लम्भक आदि का प्रयोग किया है। इसी प्रकार उपलब्ध २४५ चम्पू काव्यों में से केवल नल चम्पू (हरचरण सरोजांक्ड़) और गंगावतरण चम्पू (गंगा चरणाक्ड़) ही साक्ड़ है। अतः मात्र साक्ड़ और सोच्छ्वास् विशेषणों को चम्पू काव्य के लक्षण में समाविष्ट करना उचित नहीं प्रतीत होता है।

आचार्य विश्वनाथ ने मिश्र काव्य के भेदों का वर्णन करते हुये चम्पू काव्य का लक्षण किया है– 'गद्यपद्यमयं काव्यं चम्पूरिव्यभिधीयते' मन्दारमरन्द में भी इसी लक्षण का समर्थन किया गया है। प्रकार अलग नहीं है, और न ही इससे चम्पू काव्य की किसी नई विशेषता का ही बोध होता है। डा० सूर्यकान्त द्वारा सम्पादित दैवेज्ञ सूर्यकृत 'नृसिंह चम्पू' के भूमिका में किसी अज्ञात लक्षणकार की परिभाषा का उल्लेख है, जिसमें उक्ति, प्रत्युक्ति और विवकम्भक के अभाव को चम्पू काव्य के लक्षण के अन्तर्गत समाहित कर लिया गया है–

गद्यपद्यमयी सांक्ड सोच्छवासा कविगुम्फिता।
उक्ति प्रत्युक्ति वि कम्भ शून्या चम्पूरूदाहृता।। (केचित)

ज्ञातव्य है विभिन्न चम्पू काव्यों के परिप्रेक्ष्य में उक्ति–प्रत्युक्ति और विश्कम्भक का अभाव चम्पू काव्यों का लक्षण नहीं माना जा सकता, क्योंकि वीरभद्र विजय, विश्गुणादर्श श्री निवास,गग्डगुणादर्श, विद्वन्नमोदतरंगिणी आदि चम्पू उक्ति–प्रत्युक्ति से युक्त है तथा दृश्यकाव्यत्व का अभाव होने के कारण वि कम्भक का न होना ही उचित है।

लक्षण ग्रन्थों में उपलब्ध समस्त परिभाषायें चम्पू काव्य के बाह्य रूप का ही निरूपण करती हैं। ऐसी कोई भी परिभाषा नहीं है जो चम्पू काव्य की आन्तरिक और बाह्य विशिष्टताओं को रेखांकित करते हुये अन्य काव्याग्डों से उसके भेदक तत्वों को प्रतिपादित कर सके। मात्र गद्य–पद्यमय होना चम्पू का लक्षण नहीं हो सकता, क्योंकि इस लक्षण के आधार पर तो चम्पू काव्येतर मुक्तक काव्य, करम्भक, विरूद् आदि तथा अन्य कथा–साहित्य, जिसमें दोनों का प्रयोग हुआहो, चम्पू काव्य के अन्तर्गत आ जायेंगे। सम्भवतः इसी अस्पष्टता के कारण हेमचन्द्र ने काव्यानुशासन में चम्पू काव्य का लक्षण देने के पश्चात् उदाहरण स्वरूप वासवदता का उल्लेख कर दिया, जबकि 'वासवदता' को शास्त्र एवं लोक दोनों की ही स्वीकृति गद्यकाव्य के रूप में है।

चम्पू का लक्षण स्पष्ट न होने का कारण सम्भवतः यह प्रतीत होता है कि आचार्य दण्डी के समय तक या तो किसी चम्पू काव्य की रचना ही न हुई थी या कोई चम्पू स्वयं उनकी दृष्टि में न आया था। उन्होंने मात्र प्रचलित या श्रुत विशिष्टता के आधार पर चम्पू का लक्षण अपने कर्तव्य का इतिश्री कर लिया।

चम्पू को काव्य के रूप में विद्वानों की बीच प्रतिष्ठित स्थान परवर्ती मध्यकाल में ही प्राप्त हो सका, अतः लक्षणकारों और आचार्यो की सूक्ष्म विवेचन दृष्टि इस पर न पड़ सकी, फलतः लक्षण के अभाव में चम्पूकारों में स्वतन्त्र प्रवृति विकसित होती रही। इसका परिणाम यह हुआ कि चम्पूकारों द्वारा जिन चम्पू काव्यों की रचना की गयी उनमें गद्यपद्यमयता और प्रबन्धात्मक के अतिरिक्त अन्य सोच्छ्वासत्व – इन दो विशेशताओं को जोड़कर, चम्पूकारों की स्वछन्दता की इस प्रवृति को नियन्त्रित करने का प्रयत्न किया, किन्तु वे इसमें पूर्णतया सफल नहीं हो सके, सम्भवतः यही कारण है कि लक्षण ग्रन्थों में चम्पू काव्य की समस्त विशिष्टताओं को अन्तर्भूत कर लेने वाला कोई एक लक्षण प्रस्तुत नहीं किया जा सका।

आचार्य विश्वनाथ ने भी १४वीं शताब्दी में मिश्र काव्यों का भेद निश्चित करते समय गद्यपद्यमयता को ही मुख्य माना और चम्पू काव्यों में एकरूपता के अभाव के कारण करम्भक, विरूद आदि से अलग करने वाली चम्पू की आन्तरिक विशिष्टताओं का उल्लेख नहीं किया।

ऐसी स्थिति में लक्षणग्रन्थों से अलग हटकर चम्पू काव्यों के ही अन्तर्गत ऐसी विशिष्टताओं को ढूढ़ना अपरिहार्य हो जाता है, जिनकी कसौटी पर अधिकांश चम्पू काव्यों को अन्य काव्याड़ो से अलग किया जा सके। प्रबन्धात्मकता चम्पू काव्यों की ऐसी ही विशिष्टिता है जो इसे अन्य गद्यमद्यमय मिश्र शैली में रचित मुक्तक काव्यों से पुथक करती है। बन्धयुक्त मिश्रकाव्य का एक मात्र रूप चम्पूकाव्य ही है। इसी प्राकर चम्पू में अलकारों का आधिक्य इसे सामान्य कथा–साहित्य से अलग करता है। ज्ञातव्य है कि ये विशेषतायें लक्षण ग्रन्थों और संस्कृत साहित्य में अन्यत्र उपलब्ध चम्पू के लक्षणों में निर्दिष्ट नहीं है।

संस्कृत साहित्य एवं चम्पू काव्यः

चम्पू काव्यों का सर्वाधिक महत्वपूर्ण लाक्षणिक बिन्दु गद्यपद्यमयता है। इस सम्बन्ध में अधिकांश इतिहासकार एकमत हैं। कीथ के विचार में चम्पूकार गद्य एवं पद्य का प्रयोग एक ही उद्देश्य हेतु निरपेक्ष भाव में करते हैं। दासगुप्ता के अनुसार चम्पू काव्य का वह अंग है जो गद्य–पद्यमिश्रित हो। शास्त्री के अनुसार संस्कृत में गद्य–पद्य मिश्रित प्रबन्ध चम्पू है। खुनह्नराज के विचार में शास्त्रीय परिभाषा प्राप्त गद्य और पद्य का समानुपातिक मिश्रण, जो संस्कृत साहित्य की विशिष्ट शैली में विकसित हुआ 'चम्पू' है। कृष्णाचैतन्य के अनुसार 'गद्य और पद्य के मिश्रण में लिखित कथानक और कृष्णामाचारी के अनुसार ' गद्य और पद्य में किया गया वर्णन चम्पू है। सर विलियम्स ने अपने संस्कृत अंग्रजी शब्द कोश में चम्पू शब्द को परिभाषित करते हुये लिखा है कि चम्पू एक ऐसा विस्तृत प्रबन्ध है, जिसमें एक ही विषय का वर्णन गद्य एवं पद्य में क्रमिक ढंग से चलता है। इस प्रकार चम्पू काव्य की गद्य पद्यमयता के सम्बन्ध में संस्कृत साहित्य के इतिहासकारों के अभिमत में एकरूपता देखी जा सकती है।

संस्कृत साहित्य के विभिन्न इतिहासकारों ने भी साहित्य के अन्य अंगों के साथ चम्पू काव्य के सम्बन्ध में अपने अभिमत प्रस्तुत किये हैं, जिनसे चम्पू की कतिपय अन्तर्निहित और बाह्य विशिष्टताओं पर प्रकाश पड़ता है। इनके इतिहासग्रंथों के विश्लेषण से चम्पू काव्य के सम्बन्ध में जो वैचारिक बिन्दु प्रकट होकर सामने आते हैं वे हैं– चम्पू काव्यों की गद्यपद्यमयता, गद्यपद्य का सापेक्ष और सोद्देश्य प्रयोग, गद्यकाव्य का ही स्वरूपान्तर, वर्ण्यविषय, चम्पूकारों की स्वच्छन्द प्रवृति आदि।

संस्कृत साहित्य के कतिपय इतिहासकारों के विचार में चम्पू काव्य मिश्र काव्य–शैली के विकास की प्रक्रिया के अन्तर्गत गद्य–काव्य का ही स्वरूपांतर है। यह स्वरूपांतर पद्यांशों के आधिक्य के कारण हुआ। पं० बलदेव उपाध्याय के शब्दो में, '' चम्पू काव्य गद्य काव्य का ही प्रकारांतर से उपवृहण प्रतीत होता है'' डा० भोला शंकर व्यास ने भी इससे सहमति व्यक्त करते हुये लिखा है, '' धीरे–धीरे गद्य काव्यों में पद्यों की छौंक बढ़ती गई और बाद के चम्पू काव्यों में तो पद्यों का कलेवर गद्य भाग से भी

अधिक हो गया।'' ऐसी प्रतीत होता है कि मिश्र शैली विकास की प्रारम्भिक प्रक्रिया में गद्य रचनाओं में पद्यांश का प्रयोग सीमित दासगुप्ता का मन्तव्य है कि कि चम्पू काव्य–विधा किसी सुनिश्चित सिद्धान्त अथवा स्वरूप से बंधी नहीं है, अपितु उसका विकास गद्य काव्य से ही स्वाभाविक रूप में संयोगवश हो गया।

चम्पू काव्यों में गद्य–पद्य के प्रयोग की मात्रा का कोई निर्धारित मापदण्ड भी दृष्टिगत नहीं होता है। कतिपय चम्पू काव्यों में गद्य भाग का आधिक्य है जैसे– नल चम्पू तो कुछ पद्यांश बहुल है जैसे – चम्पू रामायण और कुछ चम्पू काव्यों में गद्य–पद्य के प्रयोग की मात्रा में समतुल्यता भी देखी जा सकती है जैसे– नीलकण्ठ–विजय । प्रायः संस्कृत साहित्य के सभी इतिहासकारों ने चम्पूकाव्यों में गद्य–पद्य के आनुपतिक प्रयोग में अपनाई गयी स्वछन्दता और इनकी प्रसग्ड़ निरपेक्षता को रेखांकि्डत किया है। दासगुप्ता के अनुसार, 'स्पष्ट लाक्षणिक निर्देशों के अभाव में एक ही उद्‌देश्य के लिये गद्य और पद्य दोनों का प्रयोग, व्यवहार में चम्पूकारों के समक्ष कभी भी प्रश्नचिन्ह नहीं रहा है। सामान्य अपेक्षा के अनुरूप पद्य का प्रयोग, किसी महत्वपूर्ण विचाराभिव्यक्ति, काव्यात्मक वर्णन, प्रभावशाली प्रस्तुतीकरण, उदात्त चरित निरूपण अथवा भावुकतापूर्ण अभिव्यंजना आदि के लियें किया जाना चाहिये, किन्तु चम्पूकारों ने सामान्य कथा प्रसग्ड को गति देने के लिये गद्य के साथ ही पद्य का भी निरपेक्षभाव से प्रयोग किया है।

यशस्तिलक चम्पू में कथा सूत्र को आगे बढ़ाने के लिये पद्य का प्रयोग तथा अनन्त भट्‌ट कृत भारत चम्पू में नवीन वर्णन हेतु गद्य के अनन्तर पद्य के अनन्तर पद्य का उपयोग उपर्युक्त कथन की पुष्टि करता है। मिश्र साहित्य के अन्तर्गत चम्पू अन्यों से इसी आधार पर भिन्न है, कि जहाँ पञ्चतन्त्र आदि कथाओं में पद्य का प्रयोग कथा के विशिष्ट विचार की अभिव्यक्ति के लिये तथा गद्य का प्रयोग कथा को आगे बढ़ाने के लिये किया गया है, वहीं 'चम्पू' में ऐसा कुछ नहीं दिखता। कीथ के विचार में पद्य और गद्य का अनियन्त्रित एवं निरपेक्ष प्रयोग चम्पू काव्यों की विशिष्टता है। इसके अतिरिक्त चम्पू ग्रन्थों में गद्यात्मक वर्णनों क ही पुनः पद्यात्मक प्रस्तुति भी यत्र–तत्र देखने को मिलती है।

निष्कर्षः

अपने समकालीन अथवा पूर्ववर्ती रचनाकारों के स्तर का गद्य अथवा पद्य साहित्य सृजित कर सकने की असमर्थता अथवा विवशता के कारण चम्पूकारों द्वारा गद्यपद्यमय शैली का प्रयोग किया गया। इतिहासकारों के इस विचार की पृष्ठभूमि में उपलब्ध चम्पू काव्यों का अपेक्षाकृत हीन काव्यात्मक स्तर कारण रहा है, यद्यपि चम्पू–रामायण, नल–चम्पू आदि कतिपय चम्पू ग्रन्थ काव्यात्मक एवं कलात्मक दृष्टि से उच्चकोटि के काव्य हैं। इस सम्बन्ध में डा० दासगुप्ता का यह कथनप विचारणीय है कि यद्यपि चम्पू साहित्य गद्य एवं पद्य दोनों की विशिष्टताओं से युक्त है, किन्तु अधिकांश चम्पू ग्रन्थों में गद्य साहित्य की वर्णनात्मक प्रतिभा अथवा पद्य साहित्य की प्रभावोत्पादक शक्ति दृष्टिगत नहीं होती, इसके अतिरिक्त चम्पूकारों की इन रचनाओं में मौलिकता का अभाव भी है। डा० भोला शंकर व्यास ने गद्य साहित्य के

समर्थ रचनाकार बाण की रचनाओं के सम्बन्ध में विचार व्यक्त करते हुये लिखा है, ''बाण के उत्तराधिकारियों में बाण जैसी प्रतिभा नहीं दिखायी पड़ती। बाण जैसी गद्य–शैली का निर्वाह करना उनके लिये बड़ा कठिन हो गया। गद्य क फलक पर बाण जैसी प्रवाहमय शैली को बनाये रखना तथा वैसी वर्णन–पटुता का परिचय देना बाण के बाद के गद्य कवियों से सम्भव न था। फलतः उन्होंने गद्य के बीच–बीच में पद्य की छौंक डाल–डाल कर एक नई शैली को जन्म दिया। डा० व्यास के ये उद्‌गार साहित्यिक विश्लेषण की कसौटी पर खरे नहीं उतरते हैं। वस्तुतः उन्होंने स्वंय ही प्रथम चम्पू काव्य के रचनाकार के सम्बन्ध में अपने विचारों को अभिव्यक्त करते हुये उक्त कथन का खंडन कर दिया है– ''त्रिविक्रम की शैली से स्पष्ट है कि बाण के शाब्दिक–क्रीड़ा वाले पक्ष को त्रिविक्रम ने और आगे बढ़ाया और इसका प्रभाव बाद के सभी गद्य काव्यों पर देखा जा सकता है।'' साहित्यिक विश्लेषण के आधार पर यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि त्रिविक्रम भट, सोमदेव, भोज आदि चम्पूकारों की रचनाओं मे बाण जैसी ही प्रतिभा सम्पन्न प्रवाहमय गद्य शैली के दर्शन होते हैं, अतः इतिहासकारों का यह विचार कि चम्पू–शैली को अपनाने की प्रवृति के मूल में चम्पूकारों की उच्चस्तरीय गद्य साहित्य के सृजन की अक्षमता अथवा विवशता कारण रही है, तर्क की कसौटी पर खरा नहीं उतरता है।

सन्दर्भः

आचार्य दण्डी : 2009 : काव्यादर्श , गीता प्रेस गोरखपुर ,1/31

अग्रवाल हंसराज : 2008 : सं0 सा0 का इतिहास , पृ0 सं0 213

डॉ राज किशोर : 2007 : सं0 सा0 का इतिहास , पृ0 सं0 245

पाण्डे सत्यनारायण : 2006 : सं0 सा0 का इतिहास , पृ0 सं0 276

.... : .... : गोपाल चम्पू / पूर्व चम्पू , 21/1

प्रसाद स्वामी : 2008 : सं0 सा0 का इतिहास , पृ0 सं0 118

डॉ राज किशोर : 2007 : सं0 सा0 का इतिहास , पृ0 सं0 145

पाण्डे सत्यनारायण : 2006 : सं0 सा0 का इतिहास , पृ0 सं0 204